अध्याय ५

जगदीशचन्द्र माथुर के नाटकों में मिथकीय नूतन उद्भावनाएँ

भूमिका –

मिथक और साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्य के माध्यम से पुरातन मिथकों को नई अर्थवत्ता प्राप्त होती है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि साहित्यिक विधाओं में मिथक की परिकल्पना को साकार करने का प्रयास साहित्यकारों ने किया है। आजकल प्राचीन मिथकों का प्रयोग साहित्यकार अपने साहित्य में आधुनिक जीवन सन्दर्भ के रूप में जादा करते है। स्वातंत्र्योत्तर काल में हिन्दी नाट्य-साहित्य में मिथकों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है। इस सन्दर्भ में डॉ. सुब्रत लाहिडा का कथन है कि "मिथक का एक प्रधान गुण है नाटकीयता। नाटकों को इससे ज्यादा फायदा पहुँचता रहा है। वर्तमान सन्दर्भों से जुड़कर मिथक अपनी नई प्रासंगिकता अर्जित कर रहे और उनके आधुनिक स्वरूप का विकास हो रहा है।"[1] साहित्य में नाटक एक ऐसा माध्यम है जो सिधे व्यापक जनसम्पर्क में रहता है। भारतीय जनमानस के प्रिय पौराणिक, ऐतिहासिक पात्रों को आज के युगीन सन्दर्भ में प्रस्तुत करके उन्हें नये कथ्य से जोडकर पेश करना आधुनिक नाटककारों का मुख्य उद्देश्य रहा है। इस दृष्टि से नाटकों में मिथक का औचित्य स्पष्ट ही है।

मिथक : अर्थबोध और अर्थविस्तार –

मिथक शब्दार्थ के सम्बन्ध में विद्वानों मे मतभेद है किन्तु मिथक की उपादेयता के सम्बन्ध में प्रायः सभी विद्वानों के मत समान है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह शब्द संस्कृत के "मिथ" या अंग्रेजी भाषा में प्रचलित "मिथ" शब्द को "क" प्रत्यय लगाकर बनाया गया है किन्तु दोनों भाषा में अंतर्गत अंतर है। अंग्रेजी में "मिथ" कोरी कल्पना है, तो संस्कृत में अलौकिकता का पुट लिए हुए लोकानुभूति बतानेवाली कथा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इसी अर्थ को ग्रहण करते हुए संस्कृत "मिथ" शब्द को "क" प्रत्यय लगाकर "मिथक" यह हिन्दी में शब्द प्रयोग किया है, जिसमें अलौकिकता

की ओर संकेत देता है। जैसे कि "पुराकथा जिसे अंग्रेजी मे "माइथालोजी" कहा जाता है, अलौकिकता से अपूर्ण होने के कारण तर्काश्रित नहीं होती। ऐसी कथाओं की सृष्टि के लिए कुछ आदिम विश्वास होते है जो कालांतर में अंधविश्वास का रूप धारण कर लेते है। उन विश्वासों की व्याख्या दुरूह हो जाती है और वे एक धुंधलके में आच्छन्न हो जाते हैं। ऐसी कथाओं तथा विश्वासों को "मिथक" शब्द से व्यवहृत किया जाने लगा है।"[2]

<u>मिथक की अवधारणा</u> –

मनुष्य मे आदिम युग में मिथको की अवधारणा कब हुई इसके बारे में निश्चित कहना कठिन है, लेकिन इतना सही है कि मिथक मानव-निर्मित है और किसी भी देश की जातीय संस्कृति की पहचान उनके द्वारा हो सकती है। प्रकृति के कार्य-व्यापारों की महत्तम परिणति मानव है। आदि मानव से आज के सभ्य मानव का जो क्रमिक विकास हुआ है, वह मानव-जाती का इतिहास है। प्रारंभ से ही मानव कुछ सोचता विचार करता आग बढ रहा है। इस विचार या चिन्तन ने "मिथकों" की अवधारणा की। डॉ.नगेन्द्र का कथन है – "मिथक मूलतः आदिमानव क समाष्टि मन की सृष्टि है।"[3] सर्वप्रथम मनुष्य ने प्राकृतिक मिथक का निर्माण किया होगा क्योंकि विश्वभर के आदिम मिथकों में सर्वाधिक स्थान प्राकृतिक मिथकों को ही मिला है। सूर्य,चंद्र, तारे, सांड, वृक्ष, विद्युत, धरती, जल अग्नि आदि प्राकृतिक मिथक लोग जीवन में लोक विश्वास के साथ अवतारित हुए। आदिम युग से आज तक भी सूर्य और चन्द्रमा के मिथक मिलते हैं। सूर्य को शक्ति तथा उत्पादक के रूप में देखा गया। भारतीय मिथकशास्त्र में सूर्य सात घोडों के रथ पर सवारी करते हैं। ग्रीक मिथकशास्त्र में सूर्य देवता का नाम हेलियस है। मिस्त्र में एपिस नाय का सांड उत्पादक करता का प्रतीक है। इसके सिर पर सूर्य का तथा पार्श्व में चन्द्र का चक्र है। भारतीय परंपरा के अनुसार ब्रम्ह, वरूण, इन्द्र, शिव आदि प्रकृति के मिथक हैं, और सूर्य, चन्द्र, पेड, नदी, पर्वत आदि प्राकृतिक मिथक हैं।

मिथकों की अवधारणा में मनुष्य की जिज्ञासावृत्ति कल्पनावृत्ति, तार्किकता तथा भावनाप्रवणता का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उदाहरणस्वरूप अगर हम सूर्य के मिथक को लेते है तो हम यह कह सकते है कि जब मनुष्य ने आकाश की ओर देखा तो उस दिन के समय सूर्य दिखाई पड़ा। उसके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि यह क्या चीज है। अतः सूर्य का गोलाकार उसके मन में प्रथमतः एक वस्तु चिहन या आद्यबिम्ब के रूप में दिखाई पड़ा। सूर्य के प्रकाश को तथा सूर्य के उदय से अस्त तक की यात्रा को देखकर उसे ऐसा लगा कि यह कोई शक्तिशाली चीज है। अतः सूर्य को शक्ति का प्रतीक के रूप में [illegible]। तत्पश्चात मनुष्य की तार्किकता और भावप्रवणता अधिक जागृत हुई और उसने सूर्य की शक्ति उसकी पूर्व से पश्चिम की ओर निरंतर चलनेवाली यात्रा उसका सौंदर्य आदि को अपने ढंग से

कसा था आख्यान मे होनेवाली कथाओ या व्याख्यानो से उसकी पुष्टि सहज ही अनुमेय है। जब सूर्य और उसकी कथा को उस समय के लोगों का विश्वास प्राप्त हुआ और जब उस देश की सस्कृति की थाती के रूप में उसे स्वीकार किया गया, तब सूर्य "मिथक" बन गया। मिथक की अवधारणा की इस प्रक्रिया को डॉ. गजानन सुर्वे ने निम्नलिखित आरेख द्वारा दर्शाया है[4] –

मिथक की अवधारणा

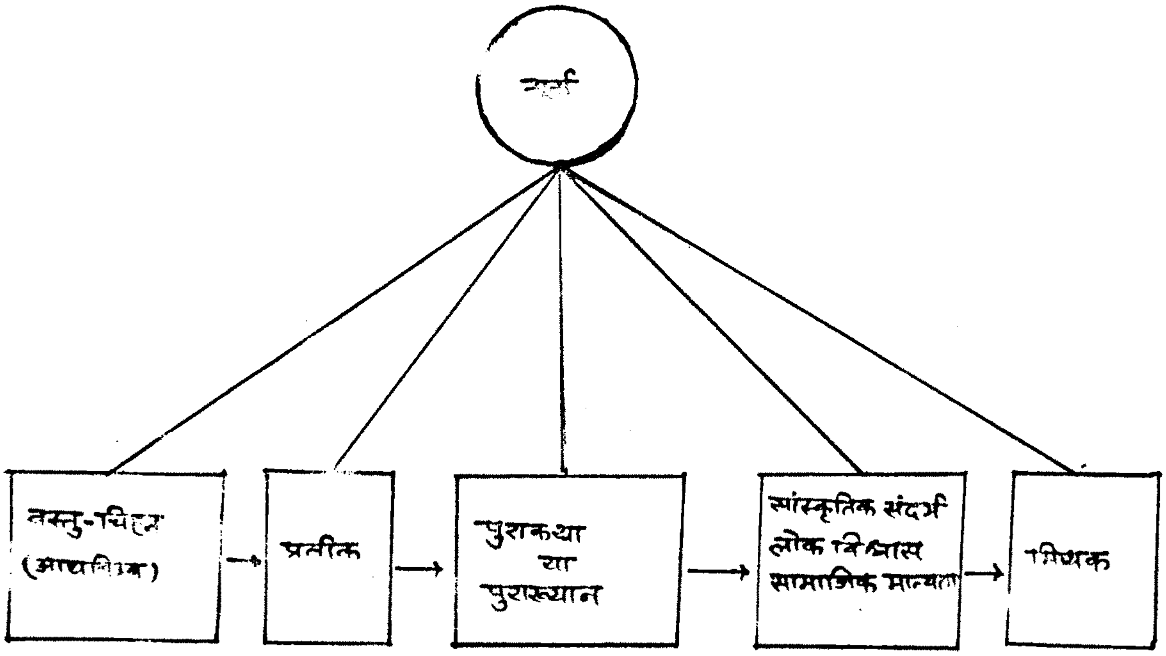

मिथक और साहित्य –

किसी भी देश की जातीय संस्कृति की पहचान का उत्तम साधन साहित्य है वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि अनेक प्राचीन ग्रंथों में पुराकथा या पुराख्यान के माध्यम से अनेक मिथक प्राप्त होते हैं। लेकिन यह ध्यान मे रखने की जरूरत है कि पुराणो में देवकथाएँ भरी हुई हैं। पर पुराण मिथक नहीं है क्योंकि पुराणों से हम भारतीय मिथकों के बारे में बहुत कुछ जानते है। पुराण सामान्य तथा प्राचीन एवं मध्यकालीन हिन्दुत्व की उसकी धार्मिक दार्शनिक, ऐतिहासिक, वैयक्तिक, राजनैतिक, सस्कृति का लोकसम्मत विवरण है। वास्तव में मिथक संस्कृति के वाहक ही है। रामायण, महाभारत, पुराण आदि के अनेक पात्र केवल पात्र नहीं बल्कि मिथक ही हैं। राम, कृष्ण, शिव–पार्वती आज भी मिथक के रूप में विशेष लोकप्रिय रहे है।

सामान्यतया कोई भी साहित्यकार अपने युग से प्रभावित होता है और अपने युग सत्य को शब्दांकित करता है लेकिन कभी–कभी वह अपने युग सत्य को साकार करने के लिए वर्तमान में जीकर भी अतीत की ओर दौडता है और अपने साहित्य में मिथकों का उपयोग करता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि किसी भी देश के सामूहिक मन को अच्छी तरह से पहचानने का सस्कृति की विरासत को

आगे बढाने का एक विश्वसनीय तथा प्रबल माध्यम मिथक है। तथापि सजग साहित्यकार अपने साहित्य में मिथकों को ज्यों का त्यों साकार नहीं करता बल्कि अपनी कारयत्री तथा भावयत्री प्रतिभा के द्वारा युग जीवन के सन्दर्भ मे रूपांतरित करता है। पुराने मिथकों को नई अर्थवता में अभिव्यक्त करता है। आदिम युग से आज तक के सभ्य मानव को आकृष्ट करने की जबरदस्त शक्ति मिथकों में होती है। परिणामस्वरूप साहित्यकार भी मिथकों की ओर आकृष्ट होता है और मिथकों को आधुनिक जीवन सन्दर्भ में अभिव्यक्त करता है। इस सिलसिले में डॉ. अग्निनी पराशर का मत समीचीन ही है – "मिथक की इस गुणवत्ता के कारण समकालीन हिन्दी कवियो ने भी अपने अनुभवों विश्वासों और आस्थाओं को व्यक्त करने के लिए उन्हे माध्यम रूप चुना है और अपने समाज या समूह की भावनाओं से तादात्म्य स्थापित करने का रचनात्मक अनुष्ठान किया है। मिथक के द्वारा ही सार्वकालिक सत्य इन्द्रियगोचर हो पाता है।"[5]

मिथक और नाटक –

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाट्य-साहित्य में मिथको की नई व्याख्या करने की कोशीश नाटककारों ने की है। हमारे हिन्दी नाटककारों ने "आधुनिकता" के सन्दर्भो को इतिहास और पुराण कथाओं की कसौटीपर कसा है। इस सन्दर्भ मे डॉ. रमेश गौतम के विचार समीचीन हैं – "स्वान्तत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य-साहित्य में इस दृष्टि को विशेष बल मिला क्योंकि नये नाटककारों ने आधुनिक संवेदना को काल बोध की कसौटीपर नहीं, मूल्य बोध की कसौटी पर परखा और पुराख्यानों का उपयोग आधुनिक जीवन की अर्थवत्ता को स्थापित करने के लिए किया।"[6] पुरातन मिथकों को नई अर्थवत्ता प्रदान करनेवाले स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटककारो में कुछ शीर्षस्थ नाम इस प्रकार हैं –

1)	जगदीशचन्द्र माथुर	"कोणार्क", "पहला राजा"
2)	धर्मवीर भारती	"अन्धायुग"
3)	मोहन राकेश	"आषाढ का एक दिन", "लहरों के राजहंस"
4)	लक्ष्मीनारायण लाल	"कलंकी", "सूर्यमुख", "मिस्टर अभिमन्यु", "नरसिंहकथा", "एक सत्य हरिश्चन्द्र", "यक्ष प्रश्न" आदि
5)	सुरेन्द्र वर्मा	"सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" "आठवाँ सर्ग" इत्यादि
6)	भीष्म सहानी	"कबिरा खड़ा बाजार में", "माधवी"
7)	डॉ. शंकर शेष	"एक और द्रोणाचार्य", "कोमलगांधार", "अरे मायावी सरोवर" तथा "रक्तबीज" इत्यादि

उपर्युक्त विवेचन से इतना सही है कि साहित्य में विशेषतः नाटकों में मिथक का

महत्त्व सर्वोपरि है और हिन्दी में स्वातन्त्र्योत्तर काल में मिथक- नाटकों की एक लम्बी परम्परा दिखाई पड़ती है। क्योंकि "आधुनिक नाटकों के लिए मिथकीय ढाँचे अधिक उपयोगी हो सकते हैं और इनके माध्यम से यथार्थ की अभिव्यक्ति हो सकती है।"[1] आजकल हिन्दी नाटकों में मिथक का जो प्रयोग प्रचुर मात्रा में दिखाई पड़ता है उसमें नाटककारों की अपनी पैनी दृष्टि तथा असाधारण प्रतिभा का ही समुचित योग है, साथ ही पुराने मिथकों को नयी अर्थवत्ता प्रदान करना है।

मिथक और जगदीशचन्द्र माथुरजी के नाटक –

मिथक के सार्थ प्रयोग की दृष्टि से जगदीशचन्द्र माथुरजी के दो नाटक "कोणार्क" और "पहला राजा" विशेष महत्त्वपूर्ण नाटक है क्योंकि इन दो नाटकों में नाटककारने ऐतिहासिक, पौराणिक मिथकों को आधुनिक जीवन संदर्भ में आँकने का सफल प्रयास किया है।

कोणार्क –

"कोणार्क" जगदीशचन्द्र माथुरजी का पहला मौलिक नाटक है। जिसकी कथावस्तु इतिहास पर आधारीत होकर भी उसमें आधुनिक जीवन संदर्भ को भी मुख्य स्थान मिला है। इतना ही नहीं "कोणार्क" जगदीशचन्द्र माथुरजी की मौलिक प्रथम नाट्य-कृति है ही, साथ ही स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटकों का नया सुत्रपात इसी नाटक से होता है। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से यह हिन्दी का श्रेष्ठ नया नाटक है। "कोणार्क" नाट्य-सृष्टि में मिथक का जो प्रयोग किया गया है उसे इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है –

1) कोणार्क के मिथकीय स्त्रोत –

अ) कोणार्क मंदिर का महत्त्व –

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद मिथकीय प्रयोग में जगदीशचन्द्र माथुरजी को अग्रणी ही नहीं बल्कि एक विशिष्ट नाटककार माना जाता है। "कोणार्क" उनकी पहली मौलिक नाट्य-सृष्टि है, जिसमें मिथकीय प्रयोग की सफलता स्पष्ट रूप से दिखाई पडती है। नाटककार ने "कोणार्क" नाटक के मूल संस्करण में "परिचय" के रूप में नाटक के उत्सपर प्रकाश डाला है, जो कोणार्क में स्थित सूर्यदेवता का मंदिर है। ईसा की सातवी शताब्दी से लेकर तेहरवीं शताब्दी तक उडीसा में भव्य, कलापूर्ण मंदिरों का निर्माण हुआ था। इनमें सर्वश्रेष्ठ सूर्यदेवता का देवालय ही है जो कोणार्क में आज भग्नावस्था में खडा है। यह मंदिर पुरी से 19 मील दूर समुद्र तट पर स्थित है। जिसका मुख्य अंश टूटा है और प्रांगण में ध्वस्त मूर्तिया तथा पाषाण खंड पडे हैं। जाहिर है कि नाटककार ने इसी कोणार्क मंदिर को अपना मिथक बनाकर "कोणार्क" नाटक की रचना की है किन्तु सवाल यह है कि मिथकीय यथार्थ में "कोणार्क मंदिर का महत्त्व क्या है? स्थापत्य अवशेष या स्वतन्त्र भारत जिसके "तीनों प्राचीरों के निकट सेना आ गयी है।

चौथी ओर समुद्र है।"[8] या "सागर के तट पर मंदिर का चौथा द्वार, वहीं से नौका में बैठकर देव जा सकते है।"[9] सचमुच कोणार्क मंदिर मिथकीय यथार्थ में स्वतंत्र भारत का रूप है जिसके एक तरफ हिमालय है तो दो तरफ भूमि जो अपनी भारत रूपी मंदिर की सुरक्षा के लिए गंगा, यमुना, नर्मदा जैसे खाईयाँ की तरह उसकी सुरक्षा करती है साथ ही उसके पूर्वी चरण पर सागर, यह सब कुछ अप्रासंगीक नहीं है, "कोणार्क" के कुछ अंश मिथकीय संगति में उसे प्रमाणित करते हैं। निम्नलिखित वार्तालाप उसका प्रमाण है-

नरसिंह देव : राजकवि विश्वनाथ से कहो, अपने "साहित्य दर्पन" में कोणार्क का प्रतिबिंब खोजे।

महेन्द्र : सागर ही जिसका प्रतिबिंब है, राजकवि का "दर्पन" उसकी झलक पा सकेगा, देव।

नरसिंह देव : तो राज-गायक चंद्रधर से कहो, इस अद्‌भुत रागिनी की प्रतिध्वनि को अपने गान में बांधे।

महेन्द्र : जल-निधी की स्वर-लहरियां ही जिसकी गूंज है, उस रागिनी को कौन गायक बांध सकेगा देव।[10]

इसी तरह मिथकीय प्रासंगीकता उपक्रम में भी स्पष्ट रूप से दिखाई पडती है - "निशब्द वातावरण को भेदते हुए एक-एक करके तीनों स्वर सुन पडते है, मानो शताब्दीयों के सोपानों को पार करनेवाले चिर जाग्रत सागर की लहरें कथा सुनाती हो।"[11] उसकी संगति धर्मपद के इस वार्तालाप में स्पष्ट होती है। "निर्दय अत्याचार की छाया में ही जो विकसते और मुरझाते है, उनको एकध विपत की घडी के लिए तैयार होने की जरूरत नहीं आचार्य - - - लेकिन मैं कहता हूँ इसकी नौबत ही क्यों आये?"[12] किन्तु वह नौबत आ ही जाती है तो वही कोणार्क मंदिर दिन-दलीत मजदूर लोगों के लिए आश्रयस्थान ही नहीं तो शत्रु से बचने के लिए और शत्रु से संघर्ष करने के लिए दुर्ग का काम कर देता जैसे "कोणार्क का मंदिर आज दुर्ग का काम देगा।"[13] इस तरह जगदीशचन्द्र माथुरजी के कोणार्क नाटक में चित्रित सूर्यदेवता का मंदिर मिथकीय नूतन उद्‌भावनाओं की दृष्टि से "स्वतंत्र भारत-मंदिर" है, जो आज भी अपनी राजनैतिक संघर्षमय गुलामी की वजह से त्रस्त एवं दयनीय है क्योंकि इस "स्वतंत्र-भारत-मंदिर का शिखर आज भी पूरा नहीं हो रहा है और न ही आराध्य की स्थापना हुई। इस तरह मिथकीय नूतन उद्‌भावनाओं में कोणार्क मंदिर का महत्त्व निस्सन्देह है।

आ) किम्वदन्ती का आधार -

प्राचीन काल स लकर आज तक नाटको का एक मुख्य आधार मिथक रहा है। ऐतिहासिक नाट्य-सृष्टि के अतिरिक्त ऐसे मिथकीय नाटक लिखे जाते रहे हैं, जिनम सामाजिक अतर्वस्तु मिथक के स्वरूप मे मिलती है। भारतीय जनमानस के प्रिय पौराणिक किम्वदन्तीयों को नय कथ्य से जोडकर पश करना आधुनिक नाटककारो का मुख्य उद्देश्य रहा है, जिसके लिए वे पौराणिक किम्वदन्ती आश्रय लिया जाता है। जगदीशचन्द्र माथुरजी की "कोणार्क" नाट्य-सृष्टि का मूलाधार उडिया में स्थित "कोणार्क" मंदिर की लोकप्रिय किम्वदन्ती ही है। नाटककार ने उस किम्वदन्ती को सक्षिप्त रूप से

"परिचय" में दिया है। उसमे संदेह नहीं की नाटककार ने इतिहास के साथ-साथ किम्वदन्ती का भी सहारा लिया है – महाप्रतापी गंगवंशीय राजा नरसिंहदव ने अपने राज्यकाल में इस मंदिर को बनावया था। लेकिन इस किम्वदन्ती को मिथक के रूप मे प्रयोगीत करते हुए स्वयं नाटककार ने लिखा है कि "मुझे उस किम्वदन्ती के करूण लालित्य ने आकृष्ट अवश्य किया किन्तु जिस विशाल और पुष्ट कल्पना का कोणार्क मन्दिर परिचायक है और जिस संघर्ष-प्रधान युग में उसका निर्माण हुआ – उसके मुकाबिले में उडिया किम्वदन्ती के भावुक और विवश नायक-नायिका क्षीण जंचे। प्रणय की अठखेलियाँ और भाग्य के थपेडों के आधार पर कोणार्क खंडहरों का सहारा ले एक रोचक कथा पट प्रस्तुत कर देने से मुझे संतोष नहीं हुआ।"[14] इसी असंतोष के कारण नाटककार उसमें नूतन समस्याओ को ढालकर मौन पुरूष को वाणी देने की धृष्टता की है। यही कलाकार के अभिशप्त मौन को वणी देने की "धृष्टता" किम्वदन्ती के आधारपर नाटककारों ने व्यक्त की है। यदपि "कोणार्क" नाटक में नाटककार ने किम्वदन्ती का यथोचित उपयोग मुख्यतया "कोणार्क के मंदिर के टूटने" में किया है फिर भी यह भी बताया है कि "इतिहास का सहारा भी मैंने अल्प मात्रा में ही लिया है, फिर भी इस नाटक को पूर्णतया अनैतिहासिक नहीं कहा जा सकता।"[15] इससे स्पष्ट है कि नाटक के मिथकीय स्त्रोतों में इतिहास और कल्पना का संगम है।

नाटक लिखने का उद्देश्य –

प्रस्तुत नाटक लिखने का नाटककार का उद्देश्य "परिचय" में ही स्पष्ट हुआ है। इस नाटक की रचना में उन्होने प्रणय की अठखेलियाँ तथा भाग्य के थपेडों के आधार पर रोचक कथावस्तु बुनने के प्रति नाटककार ने असंतोष व्यक्त किया है। इस दृष्टि से नाटककार इस बात से परिचित है कि नाटक सिर्फ मनोरंजन के लिए लिखे नहीं जाते। इसी कारण नाटककार ने किम्वदन्ती के आधार पर रोचक-कथापट बनाने के बजाय कलाकार जो युग युग से मौन रहा है उसे वाणी देने का सफल प्रयास किया है। नाटककार का यही प्रयास नाटक लिखने का मूल उद्देश्य है। स्वंय उन्हीं के शब्दों में – " – – – कलाकार के मानस में कुण्डली मार कर सोये, पौरूष-नाग की अनाहत फूत्कार की जो कल्पना मैंने की है उसे समकालीन प्रगतिवाद की प्रतिध्वनि कह कर ही न दुत्कार दें। यह सही हैं कि व्यक्तिगत वैषम्य के साथ सामाजिक समस्याओं का अनुसन्धान मैंने किया है। किन्तु इन दोनों के पूरे यूनानी दुःखान्त नाटक की सी भग्न रागिनी की प्रेरणा मुझे कलाकार के शाश्वत अन्तर्दहन में मिली है और यह नाटक उसी का प्रतीक है।"[16] इस तरह कोणार्क की रचना में नाटककार ने इतिहास तथा कोणार्क के सूर्यदेवता के मंदिर की किम्वदन्तीयों को मिला जो कथावस्तु बुनी है उसका उद्देश्य मूलतः समकालीन समस्या की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना है, इतिहास का वर्णन करना नहीं। इस तरह पौराणिक किम्वदन्ती का आधार लेकर लिखा हुआ "कोणार्क" नाट्य-प्रयोग नूतन मिथकीय उद्भावना का एक सफल प्रयोग है।

2) कोणार्क के मिथकीय पात्र –

भारतीय जनमानस के प्रिय पौराणिक पात्रों को लौटाकर उन्हें नयें कथ्य से जोड कर पेश करना आधुनिक नाटककारों का मुख्य उद्देश्य रहा है। वस्तुतः किसी भी ऐतिहासिक-पौराणिक चरित्र के सर्जन का उद्देश्य केवल इतिहास एवं पुराण की पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए, तो उसके पीच्छे एक मूल्यदृष्टि और उसकी नूतन व्याख्या होना भी अनिवार्य है। इस दृष्टि से "कोणार्क" के मिथकीय पात्रों को दो भागों में विभाजीत किया जा सकता है –

अ) प्रमुख पात्र — आ) गौण पात्र

1) आचार्य विशु — 1) नरसिंहदेव,

2) धर्मपद — 2) सौम्यश्रीदत्त और चालुक्य

आचार्य विशु –

कोणार्क नाटक की चरित्र-सृष्टि में आचार्य विशु प्रमुख पात्र है। वह महान शिल्प "कोणार्क" का सृष्ठा है। मूलतः वह एक शिल्पी कलाकार है, जो उत्कल राज्य का प्रधान शिल्पी और कोणार्क का निर्माता है। जो अपनी पूर्व आयुष्य में अपनी प्रेमिका के प्रति कुल और कुटुंब के भय से ग्रसीत होकर मुह मोडते हुए कला के आँचल में अपना मुह छुपाते है। उनकी दृष्टि से कला ही जीवन का प्रतिबिंब है और जीवनयापन का साधन भी। अपने मन में बसे अधूरे प्रेम को आचार्य विशु सूर्यदेवता के मंदिर में श्रृंगार मूर्तियों के रूप में व्यक्त कराते है। उनकी दृष्टि से कला ही जीवन का आदि और उत्कर्ष है। आचार्य विशु की दृष्टि से शिल्पी कला के व्यतिरिक्त अन्य बातें व्यर्थ हैं। शिल्पि जनता पर होनेवाले अत्याचार का ज्ञान होकर भी विशु उनके ध्यान ही नही देते। अपने इन बातों को व्यक्त करते हुए आचार्य विशु कहते है कि – "तुम समझते हो कि हम लोगों को यह सब मालूम नहीं है? लेकिन राज्य की बातों में पडना शिल्पियों के लिए अनुचित है।"[17] इस आचार्य विशु प्रधान शिल्पि होकर भी यथार्थ से पलायन करते है। जीवन की पूर्ति कला में समझनेवाले आचार्य विशु कोणार्क मंदिर का शिखर बनाने में असफल हो जाते हैं। आखिर अपने प्रधान शिल्पी के अधिकार एक दिन के लिए धर्मपद को देने का वादा करते हुए वे अपने मौन तपस्या को पूर्ण कर देते है। किन्तु राजनैतिक संघर्ष के कारण आचार्य विशु द्वारा निर्मित कोणार्क मंदिर पर आक्रमण किया जाता है क्योंकि उत्कल नरेश नरसिंहदेव की राजसत्ता चालुक्य अपने हाथों में लेना चाहता है। नरसिंहदेव कोणार्क मंदिर देखने के लिए तथा अधिष्ठान के लिए "कोणार्क" मंदिर में रहता है। ठीक उसी समय महामात्य चालुक्य कोणार्क पर आक्रमण करता है। उस आक्रमण की सबसे बड़ी हानी आचार्य विशु को सहननी पडती क्योंकि आचार्य विशु का पुत्र धर्मपद इस संघर्ष में सरदार तथा गरीब जनता का मार्गदर्शक बन जाता। आचार्य विशु अपने पुत्र को इस संघर्ष से

बचाना चाहते है। अपने पुत्र के लिए वे चालुक्य जैसे आतंकियों के सामने याचक की तरह कहकर अपने पुत्र की भीख मांगने को विवश होते हैं। किन्तु जब महामात्य द्वारा धर्मपद की हत्या हो जाती है तो आचार्य विशु चिरंतन मौन जिसका अभिशाप था जिन्होंने बारह बरस मौन तपस्या करके महान शिल्प बनवाया था, उस महान शिल्प को ही तोड देते हैं क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि कोणार्क उनकी मौन तपस्या का प्रतीक शत्रुओं के हाथ जाये या "कोणार्क" शिल्पी की पराजय का प्रतीक" हो।[18]

अतः नाटककार ने आचार्य विशु के चरित्र-सृष्टि में ही बदल होते हुए दर्शाया है। अपनी कला को ही जीवन का प्रतिबिंब समझनेवाले आचार्य विशु चालुक्य द्वारा अपने बेटे को मारे जानेपर प्रतिशोध लेना चाहता है, नहीं प्रायश्चित चाहता है। इसी प्रतिशोध में वह "कोणार्क" मंदिर का निर्माता होकर भी, उसे शत्रुओं पर गीराता है। इस तरह नाटककारने परिचय में दिए हुए वक्तव्य की पूर्ति आचार्य विशु के माध्यम से स्पष्ट की है क्योंकि आचार्य विशु का ही वह चिरन्तन मौन अभिशाप है जिसे नाटककार ने वाणी देने की धृष्टता की है, जो धृष्टता विशु द्वारा लिए हुए प्रतिशोध में स्पष्ट होती है। आचार्य विशु का यह प्रतिशोध एक तरह से नाटकीय नूतन उद्भावना ही है।

धर्मपद –

"कोणार्क" नाटक में आचार्य विशु की तरह कलाकार धर्मपद यथार्थ से पलायन करने के बजाय यथार्थ को पकडकर चलता है, प्रायश्चित के बदले प्रतिशोध की भावना रखनेवाला एक नवयुक्त शिल्पि है। धर्मपद आचार्य विशु और सारिका का पुत्र है, जिसका संकेत तृतिय अंक में मिलता है। धर्मपद में ओजमयी वाणी और विस्मृत विद्रोह का ताप अनुंशागीक है। आचार्य की भाँति धर्मपद अपनी कला को जीवन का प्रतिबिंब न मानते हुए कला को जीवन का पुरूषार्थ समझाता है जो पुरूषार्थ किसान, मल्लाह, लकडहारे मजदूर आदि में दिखायी देता है। आचार्य विशु की श्रृंगार-मूर्तियों में उसे जीवन अधूरा लगता है। धर्मपद चाहता है कि कलाकार अपनी ही कला में लीन नहीं होना चाहिए। वह आचार्य विशु को तत्कालीन मजदूर और शिल्पियोंपर होनेवाले अत्याचार का संकेत देता है, "मगर यह भी तो उचित नहीं कि जब चारों ओर अत्याचार और अकाल की लपटें बढ रही हों, शिल्पी एक शीतल और सुरक्षित कोने में यौवन और विलास की मूर्तिया ही बनाता रहे।"[19] शिल्पी जनता की यह हालत अपने उत्कल नरेश के सामने कहने के लिए धर्मपद आचार्य विशु से प्रधान शिल्पी के अधिकार पाता है जिसके बदले में वह कोणार्क मंदिर का शिखर बनाता है। उत्कल नरेश के सामने भी धर्मपद शिल्पी जनता पर होनेवाले अत्याचार का जिक्र करता है जिससे उत्कल नरेश अज्ञानी है। धर्मपद के चरित्र की विशेषता तब दिखायी देती है, जब महामात्य चालुक्य द्वारा उत्कल नरेश नरसिंहदेव को षड्यंत्र में फसाया जाता है और कोणार्क मंदिर पर आक्रमण किया जाता है। महामात्य द्वारा भेजे गए दूत के पास धर्मपद अंगारों भरा संदेश भेज देता

है और उसके चुनौती का स्वीकार करता है। धर्मपद की और एक विशेषता है, उसके पास जनसघटन की शक्ति है, वह अपने शिल्पी जनता को तथा मजदूरों को महामात्य के खिलाप लडने के लिए प्रेरित करता है।

धर्मपद के मनमे अपने माँ के प्रति असीमित आदर है, माँ द्वारा मिली हुई हाथी दत की माला का वह संजीवनी समजता है, जब उसे ज्ञात होता है कि वह आचार्य विशु का ही पुत्र है तो आचार्य के प्रति भी आदरणीय भावनाए लगी रहती है किन्तु महामात्य द्वारा आक्रमण करने पर धर्मपद युध्द में सम्मिलित हो जाता है। आचार्य विशु द्वारा उसे रोकने पर वह ममता के बजाय कर्तव्य को श्रेष्ठ समजता है-- "ममता ! वह सुनिए, मृत्यू की फैलती छाया में अत्याचारी से जुझनेवाले वीरो की पुकार सुनिए। क्या मै उसे अनसुनी कर दूँ? उन्हें मेरी जरूरत है। शीतल होती हुई यज्ञ की अग्नि मे एक बार फिर से आहुति की आवश्यकता है, शायद वह अन्तिम आहुति हो।"[20] सचमुच धर्मपद की यह आहुति अंतिम आहुति होती है राजराज चालुक्य द्वारा धर्मपद मारा जाता है।

अत: धर्मपद यह नाम ही मिथकीय है क्योंकि यह मूलत: खण्डकाव्य है जो गोपबन्धुदास जी ने लिखा है और खण्ड-काव्य का आधार है, उडिया म स्थित लोकप्रिय किम्वदन्ति। इसी मिथिकीय नाम को लेकर नाटककारने अपने कोणार्क नाटक का नायक बनाया है, जो जनसघटन मजदूर सघटन, अन्याय-अत्याचार के खिलाप आवाज उठानेवाला युवक नेता है। जिस चारो तरफ सत्ता का शोषन छन-छादम, निरकुशता एवं धर्माचरण से रहित स्वाथ-पोषित आतंक दिखाई देता है। जाहिर है कि नवयुवक नेता को यह सब सहय नही है। अत: वह बेधडक आत्मा से उस कोणार्क रचना को पूरा करता है जो जनचेतना को अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करने के लिए सडक पर ल आता है। एसी अभूतपूर्व विद्रोह जन्य कोणार्क रूपी कला रचना की परिणति से निहीत स्वार्थोंवाली जन-विराधी सत्ता का एसे रचनाकार के प्रति विद्रोह एवं दमन अवश्यम्भावी है। यही धर्मपद में मिथकीय नूतन उदभावना है। इस संन्दर्भ में कविवर सुमित्रानन्दन पन्त के विचार उल्लखनीय हैं--" विशु और धर्मपद का पिता-पुत्र का नाता और तत्संबधी करूण कथा जैसे इतिहास के गर्जन में मानव-हृदय की धडकन भी घुल-मिल कर नाटक को मार्मिकता प्रदान करती है।"[21]

<u>धर्मपद</u> :

नरसिंहदेव की उडीसामें राज्यकाल ईस्वी सन 1238 से 1264 तक माना जाता है, वे गंगवंशीय महाप्रतापी राजा थे। नाटय-कृति उन्हें कलिंग-नरेश तथा उत्कल-नरेश भी कहा है। जागीरों के लेख-पत्रों में कहा गया है कि नरसिंहदेवने ही कोणार्क मदिर का निर्माण कराया था। और

एक ऐतिहासिक सत्य है कि नरसिंहदव न बंग-प्रदेश में मुसलमान सूबेदारों को पराजित किया और गौड तक अपनी सेना को ले जाकर अनेक वर्षों तक बग-प्रदेश में वे यवनों से लडते रहें। नरसिंहदव के दरबार के प्रसिध्द कवि विश्वनाथ ("साहित्य दर्पन" के रचियता) ने अपनी अलंकार-शास्त्र की पुस्तक "एकावली" म नरसिंहदेव को "यवनावनिवल्लभ" कह कर सम्बोधित किया है।[22]

कोणार्क नाटक में वर्णीत उत्कल नरश नरसिंहदेव प्रजापति तथा प्रजाहीत नरेश है। आचार्य विशु द्वारा कोणार्क मंदिर पूर्ण होते ही नरसिंहदव बडी आत्मीयता से आते है, व यह कोणार्क मंदिर देखने के लिए लालामित हो गये थे, इसी कारण वंग-विजय के बाद अपनी सारी सेना को वंग-प्रदेश में ही छोडकर राजधानी लौट पडते है। कोणार्क मंदिर की गगनचुंबी पताका देखकर वे बालकों की भाँति अधीर हो उठे थे। धर्मपदद्वारा शिल्पीयां पर होनवाले अत्याचार की सकेत मिलते ही उत्कल नरश शिल्पीयों के सारे सुविधाओं को पूर्ववत शुरू करने के लिए आदश दते है। लकिन महामात्य द्वारा रचाए गए महाषड्यंत्र का ज्ञान होते ही उत्कल नरेश को महामात्य के विश्वासघातकी इरादे का संकेत मिलता है। किन्तु उनके संरक्षण की सारी जिम्मेदारी युवक शिल्पी धर्मपद अपने उपर लेता है तो नरसिंहदेव धर्मपद को कोणार्क का दुर्गपति बनाते है। धर्मपद जिम्मेदारी के अनुसार उत्कल-नरेश नरसिंहदंव का सुरक्षित पुरी नगरी की ओर जाने के लिए नौका में बिठाता है।

इस प्रकार नाटककारने उत्कल नरेश नरसिंहदेव इस प्राचीन चरित्र को लकर चाणुक्य की कुटील नीति के आधारपर आधुनिक विश्वासघाती राजनीति का संकेत दिया है, आज भी अच्छे- अच्छ नेताओ को इसी राजनीतिक शस्त्र से बेसहारा तथा मजबूर बनाया जाता है यही मिथकीय नूतन उदभावना है।

सौम्य श्रीदत्त :

"कोणार्क" नाटक में सौम्यश्री कोणार्क मन्दिर का नाटयाचार्य और आचार्य विशु का मित्र है। आचार्य विशु के पूर्वआयुष्य का संकेत सौम्यश्री के ही संवादो द्वारा स्पष्ट होता है। वह अपनी मूर्ति गढने के लिए आचार्य विशु को कहता है। उसके द्वारा कुंती और सुर्यदेवता के प्रणय-प्रसंग का उल्लेख होने के कारण विशु को अपने पूर्व आयुष्यकी याद आती है। और आचार्य विशु अपने और सारिका के प्रेम-सम्बन्ध के बारे में सौम्यश्री को बताता है जो सत्तरह बरस पहले की घटना है।

नाटक के तृतिय अंक में सौम्यश्री लढाई में घायल हुए आदमियों की सेवा करते हुए सामने आता है किन्तु उससे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह आचार्य विशु और धर्मपद पिता-पुत्र को मिलाता है। इस प्रकार सौम्यश्री नाटयकथा की दृष्टिस गौण पात्र है। नाटय-पुस्तक में पु.28 पर सौम्यश्रीदत्त की तस्वीर दी है जो कोणार्क-मंदिर से प्राप्त एक मूर्ति के आधारपर है। स्वयं नाटककार

ने "कोणार्क" के संशोधित संस्करण की प्रस्तावना में स्पष्ट दिया है कि "मूल सस्करण में मुकूंन्द नाम का एक कल्पित पात्र स्थपति विशु का मित्र दिखाया गया है। इस संशोधित संस्करण में उस कल्पित पात्र के स्थान पर सौम्यश्रीदत्त को मैने दिखा दिया है। सौम्यश्रीदत्त के प्रवेश से निस्सन्देह नाटक का चरित्र-चित्रण अधिक सजीव और विविध हो गया है।"[23]

राजराज चालुक्य :

"कोणार्क" मे राजराज चालुक्य उत्कल नरेश का महामात्य के रुप में अंकीत है। जो राजा के साथ महाषड्यंत्र रचाकर स्वयं उत्कल-नरेश बननेकी कोशीश करता है। नरसिंहदेव के मंत्रियों में प्रमुख थे पूर्वीय चालुक्य-वंश के राजराज यह बात श्रीकूर्मय के एक लेख से प्रमाणित होती है। महामात्य के विश्वासघातकी राजनीति का संकेत हमें वर्तमान युगीन राजनीति में भी मिलता है। इस प्रकार महामात्य राजराज चालुक्य की अन्यायी तथा अत्याचारी राजतंत्र में और महाषड्यंत्र युक्त राजनीति में मिथकीय नूतन उद्भावनाएं स्पष्ट होती है। राजराज चालुक्य के अत्याचार तथा षडयंत्र के बारेमें सविस्तर विवेचन हमने "माथुरजीके नाटकों में प्रगतिशील चिन्तन और लोक-जीवन की नयी व्याख्या" शीर्षक अध्याय मे किया है।

पहला राजा :-

"पहला राजा" जगदीशचन्द्र माथुरजी की अभीनव नाटय-सृष्टि है, पौराणिक , ऐतिहासिक, पुराकथाओं से आधुनिक जीवन संदर्भ में जोड़कर नाटककारने पुरातन मिथकों का जो नया रूप देने का प्रयास किया है, वह लाजवाब है। नाटककारने "पहला राजा" नाटक मे मिथको के माध्यमसे आधुनिक भारत की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक समस्याओं को चित्रित किया है। इसी कारण पुरातण मिथक अधिक सजीव बन चुके है और अपनी नई अर्थवत्ता के कारण सबके प्रिय बन गऐ है। कोणार्क की भांति "पहला राजा" नाटक में मिथक का जो प्रयोग किया है उसे इस प्रकार स्पष्ट किया जाता है—

1) पहला राजा के मिथकीय स्त्रोत :

अ) कथा-स्त्रोत

"पहला राजा" नाटक जगदीशचन्द्र माथुरजी की एक नवीन रचना है। आधुनिक अन्योक्ति के रूप में लिखित इस नाटक में महाराजा पृथु के पौराणिक उपाख्यान के माध्यम से लेखक ने आज की राष्ट्रीय, सामाजिक समस्याओं को, अपने भोग हुए यथार्थ को चित्रित करने का प्रयास किया है। नाटककारने माथुरजी ने कुछ मुलभूत प्रश्नों को ऐसी परिस्थिति, जिसमें कर्म में उपलब्धि की जगह उपचार

की तलाश की जाती है, मानव और प्रकृति के साधनों को आपसी रिश्ता, समाज के विकास में वर्ण-संकरता की देन, समुदाय और राजसत्ता के बीच सम्बन्धों की बुनियाद- महत्त्वाकांक्षी पुरूष में कर्म-स्फूर्ति और काम की सह अस्तित्त्व एक पौराणिक कथा तथा प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। प्रस्तुत नाटक के कथास्त्रोत को निम्नलिखित घटनाओं के माध्यम से देखा जा सकता है-

1) राजा की कल्पना :-

जगदीशचन्द्र माथुरजी ने "पहला राजा" की आधार-कथा को स्वयं प्रस्तुत किया है। इस आधार कथा से यह स्पष्ट है कि नाटक का सम्बन्ध भारत के उस प्राचीन काल से है जब राजा या शासन नहीं हुआ करते थे। इस का काल-निर्देशन नाटककारने स्वयं ही किया है। आर्यों और हड़प्पा सभ्यता के पुरातन निवासियों में प्रबल संघर्ष चल रहा था। आर्य अगन्तुक थे और हड़प्पा निवासी यहाँ के मूल निवासी। उस समय राजा और प्रजा जैसा विधी-विधान समाज में विध्यमान नही थी। स्वयं नाटककारने के शब्दों— "अत्यन्त प्राचीनतम काल में राजा नहीं थे। यह उन दिनों की बात है जब आर्यों को भारत में आये बहुत दिन नही हुए थे और हड़प्पा सभ्यता के पुरातन निवासियों से उनका संघर्ष चल रहा था। देवताओं के अनुरोधपर भगवान् विष्णू ने अपने तेज से विरजा नामक एक ऐसे मानस-पुत्र की सृष्टि की जो मानव समाज में श्रेष्ठतम पद का अधिकारी हुआ। उसके बाद ब्रम्हवर्त (हरियाणा-पंजाब के सरस्वती का प्रदेश) में चार या पाँच शासक हुए। पर सभी संन्यासी हो गए, शासक का भार उन्होने नही संभाला।"[24]

2) वेन वध :-

उन्ही शासको के पश्चात अंग नामक राजा हुआ। इसकी पत्नी सुनीथा की मृत्यु की पुत्री थी। इनका एक पुत्र वेन नाम से हुआ जो कि अत्यन्त अत्याचारी, अनाचारी और उद्दण्ड था। वेन के दुर्व्यवहार और उद्दण्ड स्वभाव के कारण उसके पिता अंग एक दिन चुपचाप घर छोड़कर वन को चले गए। अंग की अनुपस्थिति में आर्यांपर ब्रम्हावर्त के दस्युओं के निरंतर आक्रमण होने लगे। अत्रि भृगु, शुक्राचार्य, गर्ग आदि ने अपनी रक्षा के लिए सुनीथा की इच्छा से वन को शासन भार दे दिया। किन्तु वेन ने ब्राम्हणों की रक्षा करने की अपेक्षा उन्हीं पर अत्याचार करना शुरू कर दिया। उसके अत्याचारों और अनाचारों को सहने के पश्चात अपने मंत्रों, हुंकारो और मंत्रपूत कुशा के प्रहारों से वन को मार डाला।

3) वेन के शव का मन्थन :-

वन की मृत्यु के पश्चात उसकी माता सुनीथा ने मंत्रो और विशेष प्रकार के लेपनो

से शव को सुरक्षित रखा। किन्तु ब्रह्मावर्त में फिर दस्युओं के आक्रमण होने लगे। अन्ततः अपनी रक्षा के लिए मुनियों ने वन के शव को लेकर मंत्रोच्चार सहित पहले उसकी दाहिनी जंघा का मन्थन किया जिसमें से वर्ण संकरता का प्रतिनिधी निषीत पैदा हुआ। इसे ऋषियों न "निषाद" नाम दिया। आगे चलकर यह जाति पर्वतों और वनों में रहनेवाली निषाद जाति कहलाई जाने लगी"[25] इसके पश्चात ऋषि-मुनियों ने दाहिनी भुजा का मंथन किया। इससे एक गौरवपूर्ण, रूपवान और अत्यन्त प्रतापी व्यक्ति का जन्म हुआ। उसके उभरते ही सूत-मागध ने उसका गुण-गान प्रारंभ किया। ऋषियों ने इसका नाम पृथु रखा। किन्तु पृथु न जब अपनी प्रशंसा सुनी तो उसने सुत-मागध को टोका। तत्पश्चात उस दिव्य पुरूष पृथु ने ऋषि-मुनियो स पूछा कि उसे कौन स कार्य करने है। इस पर शुक्राचार्य आदि मुनियों ने उससे कुछ प्रतिज्ञा करायी यथा-वद, विहित मार्ग का मन, वचन और कर्म से पालन करना. वेद-कथित दण्डनीति का प्रयोग करना, सभी प्राणियो के प्रति समान भाव रखना, समाज को वर्णसंकरता से बचाना। जब पृथु ने उक्त वचना को स्वीकार कर लिया तो मुनियां न उस "पहला राजा" घोषित किया।

4) <u>सूखी सरस्वती और पानी का प्रबन्ध :-</u>

उर्वी की अभिप्रेरणा स प्रेरित होकर पृथु और कवष के साथ मिलकर प्रकृति के प्रति आकर्षित और संघर्षशील होता है। वह मानव समुदाय के कल्याण के लिए उसका उपयोग करता है। सरस्वती और दृषद्वती नदियों की धाराओं को मोडने के लिए बाँध बनाया जाता है। स्वयं कवष का यह कथन इस सन्दर्भ में दृष्टव्य है— "हमें एक और भी युध्द लडना है। सरस्वती की धारा का घेरनवाले रेगिस्तान के विरूध्द।"[26] और ओ दोनो भी प्रकृति को अनुकूल बनाने का प्रयत्न करते रहते है। जब पृथु देखता है कि इन्द्र आदि दवता मनुष्य के अनुकूल नहीं है और धरती पर सूखा पड रहा है तो वह सूत मागध से देवताओं की अर्चना करने को कहता है। दूसरी ओर कवष भी अपने इस कर्म पर निरन्तर अग्रसर है। इस प्रकार अंत में कवष और पृथु दोनों भी सरस्वती नदी पर बाध बाधकर पानी का प्रबध करने की कोशीश करते है।

आ) <u>नाटक लिखने का उद्देश्य :-</u>

किसी भी रचना का लेखन निरूद्देश्य नहीं हुआ करता। उसका कोई न कोई उद्देश्य आवश्यक होता है। प्रस्तुत नाटक की रचना में माथुरजी का क्या उद्देश्य रहा है, और उन्होंने इस नाटक के माध्यम से हमे क्या संदेश दिया है, यह विचारणीय प्रश्न है। उनके पौराणिक, ऐतिहासिक आदि सभी प्रकार के नाटकों में एक महान उद्देश्य निहित है— मानवता के लिए उनमें एक संदेश है। "पहला राजा" भी उनकी एक सौद्देश्य नाटय-कला रचना है। स्वयं उनका कहना है-

"हरके नाटककार को अपने अनुभव के दायरे में स ही समस्याएँ और परिस्थितियाँ बेचैन करती है, और उन्हे उजागर करने के लिए वह पात्र और प्रसंग खोजता है। उन्हे ही वह मंच की परिस्थितयों मे बैठाता है। यही मैने इस नाटक में किया है।"[27]

अतः स्पष्ट है कि नाटककार को कुछ समस्याओंने आक्रान्त किया है, उन समस्याओं का निदान प्रस्तुत नाटक मे माध्यम से प्रस्तुत करना चाहते है। य समस्याए है— समाज में व्याप्त संकीर्णताएँ, भ्रष्टाचार, न्यस्त स्वार्थ, वर्ग-संकरता की समस्या आदि, जिन पर आधुनिक युग की समस्याओं की प्रतिच्छाया स्पष्टतः प्रतिभासित होती है। स्वयं नाटककार ने इस तथ्य को स्वीकारा है। "इलाहाबाद वाले जवाहरलाल नेहरू को समर्पण को निरुपित किया जा सके।" अतः जवाहरलाल नेहरू जी की समस्याओं को नाटकीय रूप देना ही नाटककार का उद्‌देश्य है ऐसा कहा जाय तो गलत न होगा। क्योंकि नाटक का कर्मशील पुरुषार्थी पृथु वास्तव में नेहरू ही है और आर्यावर्त का पहला राजा होने के कारण जिन समस्याओं से पृथु जुझता है वे समस्याएँ नवोदित राष्ट भारत के प्रथम प्रधान-मंत्री श्री नेहरू के सम्मुख भी थी जिनस उन्हें निरंन्तर जुझना पडा। अपने इस उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए नाटककारने यद्यपि पौराणिक कथा को उठाया है किन्तु उसमें आज की समस्याओं को आवेष्टित करके उसे यथार्थपरक रचना बना दिया है। इस दृष्टि से नाटककार के उद्‌देश्य इस प्रकार है —

1) <u>कर्म की प्रेरणा देना</u> :-

"पहला राजा" नाट्य-कृति का सबसे प्रस्तुत उद्‌देश्य यह है कि कर्म की प्रेरणा दना। पृथु, कवष, एवं उर्वी को इस संदर्भ में लेखक ने महान् कर्मशील चरित्रा के रूप में प्रस्तुत किया है। पृथु एक पुरुषार्थी व्यक्ति है जो निरन्तर कर्मण्य रहता है और परिस्थितियाँ से जुझता रहता है। किन्तु अपने मंत्रिमण्डल के कुचक्रों में पडकर वह पृथ्वी की पूजा करनेवालों को दस्यु समझकर उनसे युध्दरत होने की प्रतिज्ञा करता है। उर्वी इस पूजा की अधिष्ठात्री है, वह पृथु को कर्म करने की प्रेरणा देती हुई कहती है— "हाँ! उठाओं यह धनुष्य और इसकी कोटि से उखाडो शिलाओ को, उँचे-नीचे टीलों को समतल करो। खतों मे पानी ठहरेगा। मिट्‌टी मे नमी आयगी। हरियाली फैलेगी। बालू से रूकी हुई नदिया की धाराएँ फिर बह निकलेगी। और तब सदियों दुहा गौ धरती मां क स्तनां में सैकडो मानव संतान के लिए दूध उतरेगा"[28] उर्वी द्वारा दी गई कर्म की यह प्ररणा ही आर्यों के पहल राजा को नई दिशा देती है। उर्वी पृथु को कर्मपुरूष बनने का आव्हान करती है। वह चाहती है कि पृथु सब प्रजा से समानता का व्यवहार कर, सबको सुखी करके के लिए कर्मपथ पर अग्रसर हो इसीलिए तो वह

उससे कहती है-- "तुम राजा हो, प्रजा के नेता हो। तुम्हारा पुरूषार्थ सिर्फ युध्द और संघर्ष में ही तो नहीं है। मै वसुंधरा हूँ, मुझे दुहकर अभीष्ट वस्तुओं को निकालने में भी तुम्हारा पुरूषार्थ है और तुम्हारी प्रजा का धर्म है। तुम आर्यकुल के पहले राजा हो। हे राजन! कर्मपुरूष बनो।"[29]

2) <u>एकता की प्रेरणा देना</u> :

आर्य-अनार्य के संघर्ष का चित्रण करके नाटककारने यह प्रस्तुत किया है कि यदि हम अपने को विभिन्न जातियां, समूहों या धर्मों में विभक्त कर आपस में लडते रहे तो राष्ट्र की समृध्दि कभी सम्भव नहीं है। राष्ट्र तो तभी प्रगति कर सकता है जब हममें साम्प्रदायिक सौमनस्य होगा। हम एकता की रज्जु में बंधे रहेंगे। मुनियों जैसे कुछ स्वार्थी और धर्मान्ध लोग अपनी धर्म-रक्षा के नाम पर देश को खण्डित करने का प्रयास करते है, उनसे हमें बचना होगा। बल्कि ऐसे स्वार्थी नेताओ को प्रताडित पराजित करना होगा। इसीलिए तो उर्वी पृथु से कहती है- " तुम राजा हो। आर्य और अनार्य, नाग और निषाद, सभी का ताना बाना ही तो तुम्हारा राजवस्त्र है। उन्हे मिलाओगे तो समाज का आधार मज़बूत होगा, अलग रखोगे तो समाज भी टूक-टूक होगा और धर्म भी।"[30]

3) <u>वर्णसंकरता को हटाने की प्रेरणा</u> :

प्रस्तुत नाटक में नाटककारने वर्णसंकरता के प्रश्न को भी उठाया है। कवष वर्णसंकर सन्तान है किन्तु नाटककारने उसकी कर्मठता, विरता,शक्ति और कर्तव्यपरायणता की अतिशय प्रशंसा की है क्योकि कवष ने अपनी कर्मठता से रेगिस्तान में नहर खोदकर सरस्वती का जल निकाल लिया और उसके जल का आचमन किया था। तब पृथु ने कहा था कि "तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी हुई कवष। सरस्वती के अन्तस के पावन जल का आचमन तुमने किया।"[31] इस प्रकार नाटककारने वर्णसंकरता के रोग से समाज को दूर करने का उपाय प्रस्तुत किया है।

<u>निष्कर्ष</u> :-

अतः हम कह सकते है कि माथुरजी ने प्रस्तुत नाटक में अपने उद्देश्य एवं संदेश में पूर्णतया सफलता पाई है। उन्होने जिन समस्याओ को उठाया है उनका निराकरण भी प्रस्तुत किया है।

---

2) पहला राजा के मिथकीय पात्र :-

"कोणार्क" की भाँति "पहला राज" नाटक के मिथकीय पात्रों को दो विभागों मे विभाजीत किया जा सकता है--

अ) प्रमुख पात्र
1) पृथु
2) कवष
3) मुनिश्रेष्ठ शुक्राचार्य, गर्ग, अत्रि,

आ) गौण पात्र
1) सुनीथा
2) अर्चि
3) उर्वी

1) पृथु :

जगदीशचन्द्र माथुरजी के कलापूर्ण नाटक "पहला राजा" का नायक एवं प्रधान पात्र पृथु ही है। नाटक का मूल एव केन्द्रीय पात्र पृथु ही है अत: उसी को ध्यान में रखते हुए नाटककारने नाटक का नामकरण भी उसी के आधारपर किया है। पृथु का चरित्र एक पौराणिक चरित्र है, किन्तु उसे चित्रित करने मे नाटककारने अपनी मौलिकता प्रदर्शित की है। पृथु क पौराणिक व्यक्तित्त्व और व्यक्तित्त्व की रेखाएँ नाटककारने केवल प्रतीक के रूप मे ग्रहण की है। इसी कारण पृथु का चरित्र एक प्रतीक के रूप में भी दखा गया है। स्वयं जगदीशचन्द्र माथुरजी का इस सन्दर्भ मे कथन महत्त्वपूर्ण एव द्रष्टय है-- " पृथु की कथा महाभारत के "राजधर्मानुशासन पर्व" में संक्षिप्त रूप में दी गई है और भागवत पुराण (चतुर्थ स्कन्ध, उन्नीसवाँ अध्याय) तथा विष्णु पुराण में उसम अनेक प्रसग जोडकर उसे विस्तृत किया गया है। किन्तु पृथु को उल्लेख ऋग्वेद और अथर्ववद दोनो में मिलता है। शतपथ ब्राहमण मे उसे "पहले राजा" की संज्ञा दी गई है। इन्ही उल्लेखों को महाभारत और पुराणो में सिलसिलेवार आख्यान का रूप दिया है।"[32] --- पृथु वास्तव में एक प्रतीक रहा होगा उन तीनों युगांतकारी परिवर्तानों का, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है। पुराणों में पृथु की एक दृढ संकल्प, सत्य प्रतीक, महान विजेता, ब्रहमन भक्त शरणागत वत्सल और दण्डपाणी अवतारी पुरूष के रूप में प्रतिष्ठा हुई है। "पृथु ने देवताओं की आज्ञानुसार राज्य का वहन किया। शुक्राचार्य उसके पुरोहित हुए, बालखिल्यागण तथा सरस्वती तट पर रहनेवाले महर्षिगण मंत्री बने, गर्ग ज्योतिषी, सूत और मागध नाम के दो बंदी स्तुतिपाठ करनेवाले हुए। प्रसन्न होकर पृथु ने सूत को अनुप देश और मागध को मगध प्रदान किया। पृथु ने ऊबड-खाबड समस्त पृथ्वी को समतल किया। समस्त देवताओं और सुमेरु पर्वत, नदियों आदि ने पृथु का राज्याभिषेक किया। पृथु के चिंतन करते हुए घोडे, रथ, हाथी, मनुष्य (करोडों की संख्या मे)

प्रकट हो गये। वृध्दावस्था, चोरी, दुःख तथा दुर्भिक्षविहीन राज्य संभालने वाला पृथु "राजा" कहलाया क्योंकि उसने समस्त प्रजाओं का "रंजन" किया था।"[33] लेकिन नाटक में पृथु कुछ और भी है। वह विभिन्न दुविधाओं और खिंचावों का बिन्दु है। हिमालय का पुत्र, जो प्रकृति की निश्चल क्रोड में खो जाना चाहता है, आर्य युवक जो पुरुषार्थ और शौर्य का पुंज है, निषाद, किन्नर एवं अन्य आर्येतर जातियों का बन्धु जो एक समीकृत संस्कृति का स्वप्न देखता है, दरिद्र का [illegible] और निर्माण का नियोजक जिसे चक्रवर्ती और अवतार बनने के लिए मजबूर किया जाता है।"[34] अतः स्पष्ट है कि "पहला राजा" तथाकथित आधुनिकतावादीयों की तरह मिथकीय प्रयोगों का चमत्कार नहीं है, तो उन्हें प्रासंगिक दायरों में लाते हुए उनसे उत्पन्न अन्तर्विरोध एवं उनके रहस्य-सूत्रों अर्थात बारीकियों का दर्द है। उसके लिए आवश्यक यह है कि उसे नाटक के समर्पण से लेकर उसके भीतर तक देखा जाए। नाटक शुरू होता है समर्पण से — "इलाहाबादवाले जवाहरलाल नेहरू की याद में—।"[35] मूलतः यही नाटक का "[illegible]" है जिसका संकेत बाहर-भितर और समर्पण में देकर ही वह "पहला राजा" के नाम पर उसका नाम लेने से इन्कार करता है।

प्रस्तुत मिथक की नाटकीय बारीकियों में पृथु वास्तव में कौन है? मिथकीय संगति की बुनावट में उसका वर्ग चरित्र क्या है? और इतिहास और परम्परा के तहत उस तथाकथित पृथु की प्रगतिशील भूमिका के कारण क्या रहे हो? यही मूलतः "पहला राजा" के मिथकीय यथार्थ का विवेच्य विषय है।

<u>पृथु : दृढ़ एवं साहसी व्यक्तित्व :</u>

पहला राजा पृथु के चरित्र में ये दोनो विशिष्टताएँ मूलभूत हैं। पृथु के साहस का परिचय नाटक के प्रारम्भ में ही मिलने लगता है। पृथु कवष के साथ ब्रम्हावर्त में प्रवेश करता है और उसका मुख्य ध्येय है कि वह अपने गुरु भाई कवष को सुनीथा को लौटाना। किन्तु ब्रह्मावर्त में आते ही मुनिगण उसके सामने यह समस्या रख देते है कि ब्रह्मावर्त में दस्युओं का भय है और उनसे मुनियों के यज्ञो एवं आश्रमों की रक्षा करना एक समस्या है। गर्ग ऋषि को पृथु कहते हैं— "संरक्षण। वह तो मामूली-सी सेवा थी और हमारा कर्तव्य था। — मगर डाकुओं के दूसरे गिरोहों से सावधान रहना होगा आप लोगों को। —— लौटते वक्त मै आश्रमों के आसपास के क्षेत्र में एक चक्कर लगाऊंगा।"[36] और अपने साहस का वह वास्तव में दस्युओं को पराजित कर परिचय देता है। शुक्राचार्य पृथु के साहस एवं पराक्रम की प्रशंसा करता है।

पृथु का साहस हमें उस स्थल पर भी मिलता है जब अकाल और भूख से पीड़ित जनता में असंतोष व्याप्त हो जाता है। क्रुध्द भीड़ सूत और मागध पर प्रहार करने लगी। इसकी सूचना जब पृथु को मिलती है तो वह निर्भिकतापूर्वक निहत्था ही हिंसक भीड़ में चला जाता है। राजा पृथु की इस अपूर्व साहसिकता का उल्लेख हमें दासी के इन शब्दों में मिलता है— "उन्होंने आजगव धनुष्य उठाकर रख दिया । खड्ग को छुआ तक नहीं। निहत्थे भीड़ में घुस गए और उस तरफ बढ़ने लगे जहाँ सूत और मागध पर भीड़ बेतहाशा प्रहार कर रही थी।"[37] वास्तव में पृथु के साहस की कोई सीमा नहींहैं।

"पहला राजा" पृथु के चरित्र में दृढ़-प्रतिज्ञ भाव भी मिलता है। अपने कहे हुए शब्दों और दिए हुए वचनोंपर हर कीमत पर टिकता है। अपने व्यक्तिगत स्वार्थों और सम्बन्धो से वह अपने बचनों को उपर मानता है। नाटक में इसका ज्वलंत उदाहरण उर्वी और कवष है। ब्रह्मावर्त में आने से पहले पृथु का प्रणय सम्बन्ध उर्वी से था। पृथु आर्य-पुत्र था और उर्वी दस्यु-कन्या। जब मुनि पृथु को ब्रह्मावर्त का पहला राजा बनाते है तो उससे यह शर्त कराई जाती है कि मै रक्त की मिलावट नही करुंगा तथा रोकूंगा अर्थात वर्णसंकरता को रोकना पृथु का कार्य था। राजा बनने के बाद वह अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए वह अपना सम्बन्ध उर्वी से तोड लेता है। कवष उर्वी से सम्बन्ध की बात करता है तो पृथु उसे स्पष्ट कह देता है कि "मैने वचन दिया है कि रक्त की मिलावट नही होने दूँगा। —— उर्वी —— दस्युकन्या है, है न?"[38] इस बात पर नाराज होकर कवष पृथु से सदा के लिए अलग हो जाता है तो पृथु अपने दृढ एवं साहसी व्यक्तित्व का परिचय इन शब्दों में देता है-- "और तुम —— जंघापुत्र? तुम ? कवष। —— मैं समझ रहा हूँ तुम लोगों की चाल। जाओं, जाओ, लेकिन सावधान!"[39]

<u>आश्रम रक्षक एवं ब्राहमण पालक :</u>

पृथु भारतीय सभ्यता और संस्कृति में विश्वास करता है उसी के अनुरुप ब्राह्मणो एवं आश्रमों की परम्परागत प्रणाली को बनाए रखना चाहता है। ब्रहमावर्त में आते ही उसके सम्मुख ब्राहमणो के यज्ञों और मुनियों के आश्रमों की रक्षा का प्रश्न उठता है। और उसका पहला कार्य इनकी रक्षा करना रहा है। शुक्राचार्य पृथु के इस कार्य की ओर संकेत करता है। जब पृथु राजा बनना स्वीकार कर लेता है तो मुनि उससे कुछ शर्ते स्वीकार कराते जिनमें एक शर्त यह थी कि -वेदपाठ ब्राहमण आपके लिए अदण्डणीय होगें। और इस शर्त को भी मानकर पृथु कुशा में तीसरी गाँठ लगा देता है। इसी प्रकार पहला वचन भी आश्रमों और मुनियों के हित में ही पृथु स्वीकार करता है। पृथु की ब्राहमण-

भक्ति उस समय भी दिखाई देती है जब नहर बनाने के लिए वह मुनियों से मजदूरों की माँग करता है।

पृथु : पहला भूपालक :

पहला राजा पृथु के चरित्र के अनेक पक्षों में उसका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि वह सच्चे अर्थों में पहला भूपालक राजा है। नाटककारने इस संदर्भ में लिखा भी है- "लेकिन इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक है उत्पादन बढानेवाला, उसे समतल कर उसकी आर्द्रता का संवर्धन करनेवाला कृषि और सिंचाई और भूविभाजन का प्रमुख नेता पृथु।"[40] पृथु ने जनता को सुख और शांति प्रदान करने के लिए भूमि की काया-पलट की। जब अकाल और भूख से पीडित जनता में असन्तोष की आग भडक उठती है तो वह मुनियों से क्रुध्द होकर पुछता है- "मेरे राज्य में अकाल क्यों है?—— पैदावर क्यों नही होती? वह सारा जल कहाँ चला जा रहा है? आपके यज्ञोसे उत्पन्न अग्नि जिन जंगलो को जला रही है वहाँ की धरती बाद में धान क्यों नही देती? मिट्टी है उसमें रस नहीं। पानी है उसमें नमी नहीं। एक ही सत्य है, एक ही पुकार— भूख। भूख ?"[41] और मुनि उसे यह बताते है कि भूचण्डी के कारण ऐसा हो रहा है तो वह उन्माद में भर उठता है। वह उसका विनाश करने का प्रण करता है। किन्तु उर्वी द्वारा कर्मयोगी बनने की प्रेरणा मिलने पर वह धरती रूपी गौ को दुहने का कार्यक्रम कवष के सम्मुख रखता है। और दो वर्षों में पृथु के प्रयास तथा बाहुबल से ब्रह्मावर्त की भूमि में नवीनता आ जाती है। सारी भूमि समतल होकर खेती देने लगती है। गाँव कस्बे बन गए थे और खाने सोना उगलने लगी थी। क्योंकि "पृथु ने पृथ्वी की प्रेरणा से धनुष की नोक से पर्वतों को फोडकर भूमंडल को समतल कर दिया ताकि इंद्र का बरसाया हुआ पानी समस्त पृथ्वी को समान रूप से सींच सके।"[42] इस तरह सच्चे अर्थ में पृथु पहला भूपालक है। नाटक के अन्त के स्वयं पृथु के शब्द उसके चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। यथाः "—— मैं आदिराज पृथु, आर्यों का पहला राजा। मेरा यही स्वरुप तो सदियों बाद याद किया जायेगा, धनुषबाण से सुसज्जित देह, खड्ग की चमक से मण्डित मुख, शत्रुओं को दहलाने वाले घोर स्वर का विधायक, पराक्रमी विजेता, दस्युओं को विनाशक, प्रजा का नायक, मुनिया का पालक-पृथु ।।"[43] पृथु पृथ्वी (उर्वी) को "सहचरी" "प्राण" तथा "माँ" के नाम से पुकारता है[44] और नाटक का अन्त "भूमि माता है और मै इस पृथिवी का पुत्र हूँ" इस प्रसिध्द वेदवचन[45]से होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नाटककारने पृथु के चरित्र मे मिथकीय नूतन उद्भावनाओ को वाणी दी है।

कवष :

"पहला राजा" नाटक मे आर्य-अनार्य जातियो के सांस्कृतिक समन्वय को उभारा गया है। कवष को अनार्य संस्कृति के प्रतीम करूप में प्रतिष्ठित कर माथुरजी ने प्रश्न उठाया है कि वर्णसंकरता समाज के लिए हानिकार है या उपादेय? माथुरजीने कवष को वेन का जंघापुत्र कहा है, यद्यपि कवष नामक निषाद का वेन का पृथु से कोई सम्बन्ध नही है किन्तु नाटककारने उसे कथा-संयोजन और अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु पृथु और उर्वी के मध्य रखा है। उसका परिचय तो नाटककारने पौराणिक रूप में ही दिया है अर्थात, निषाद, अनार्य जाति का प्रतिनिधी और वर्णसंकर आदि कहकर उसे अनार्य से सम्बन्ध किया गया है।

आत्याचारी शासक वन का एक शूद्र नारी स अनैतिक संबंध था। वह स्त्री तो मर गयी किन्तु कवष को जन्म अवश्य दे गयी। वेन पुत्र कवष का पालन-पोषण स्वय उस पिता का अंग आपने आश्रम के करता था। युवा होने पर और वेन की मृत्यु हो चुकने पर अंग उसे पृथु के साथा इसलिए ब्रहमावर्त भेजता है ताकि उसे अपना पैतृक अधिकार मिल जाय और वह वेन के उत्तराधिकारी के रूप में शासन कर सके। किन्तु आर्य-संस्कृति का स्वयंभू रक्षक और नियामक मुनि समुदाय कवष के स्थानपर पृथु को ही शासक स्वीकारता है और कवष ब्रहमावर्त स बाहर चला जाता है।

"पहला राजा" नाटक मे यद्यपि कवष को पहले पृथु के साथ प्रस्तुत किया गया है किन्तु पौराणिक आधार को बनाए रखने के लिए शुक्राचार्य आदि ऋषियों द्वारा सुनीथा से वेन का शव माँगकर उसकी जंघा का मंथन करके कवष को उत्पन्न कराया गया। अपने आपके श्रष्ठ समजनेवाले मुनिवृन्द इस कवष से घृणा करते है। वे उसे अपने समकक्ष नही समझजे इसीलिए उसका तिरस्कार किया जाता है। प्रारम्भ में ही उसे अन्य जातियों का सरदार घोषित कर दिया जाता है। कालान्तर में वे कवष को अपने आश्रम से भी निष्कासित कर देते है। वे उसे वर्णसंकर, अनार्य एवं शूद्र आदि कहकर उसका बार बार अपमान करते है। पृथु उसका सहयोग एक ऐसे मित्र के रूप में प्राप्त करता है जो उसके स्वत्व से भी बढकर है। कवष से ही पृथु को अस्तित्व मिलता है। अन्यथा कवष की अनुपस्थिति में पृथु का चरित्र व्यर्थ हो जाता है, यहाँ तक कि कवष की अनुपस्थिति मे सम्पूर्ण नाटक ही अपने उद्देश्य से हीन हो जाता है।

कवष : कर्म का उपासक :

कवष शुध्द वीर और निर्भीक तो है ही किन्तु उसके चरित्र की सबस बडी विशेषता

उसकी कर्मवीरता है। वह कर्म का उपासक है। बातों पर विश्वास न कर वह कर्मपर ह। विश्वास करता है। कर्म के प्रति उसकी यह आस्था उसे एक कर्मवीर के रूप मे प्रतिष्ठित कर देती है। वह प्रारम्भ में ही पृथु से कहता है कि "चलो पृथु । मै,तुम और उर्वी सरस्वती की धारा को फिर से बहाने की तदबीर खोजे और यों झगडे की जड ही दूर कर द।"[46] किन्तु जब पृथु उस दस्युओ के विरूध्द युध्द करने के लिए प्रेरित करता है तो वह स्पष्ट कहता है — " एक और युध्द भी लडना है। सरस्वती की धारा को घेरनेवाल रेगिस्तान के विरूध्द।"[47] कर्म का उपासक होने के कारण ही वह पृथु का सनापति बनना अस्वीकार कर देता है और अपने लक्ष्य की ओर बढ जाता है। वह रेगिस्तान में जाकर उर्वी के साथ श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करता है और सरस्वती की धारा को मोडने के लिए नहर निर्माण कार्य में एक श्रमिक की भाँति सन्नद हो जाता है। कवष के इस श्रमिक रूप का परिचय इस वार्तालाप से दिखाई पडता है --

पृथु : मै तुमसे युध्द करने आया था कवष।

कवष : युध्द ! इस समय तो मेरे रक्त की अपेक्षा तुम्हे शायद वह जल ज्यादा कीमती लगे।

पृथु : कवष, उस दिन तुमने मेना सेनापति बनने से इन्कार करके ठीक नही किया। लेकिनआज।-

कवष : मेरी सेना तुमने देखी ? सैकडों ने मिलकर उस यंत्र को चलाया और सरस्वती के सूख वक्षस्थल में नहर की रेखा खिंच गई।"[48]

कवष न केवल कर्मयोगी है वरन् पृथु को भी कर्म के प्रति प्रेरित करता है। जब पृथु दस्युओं को विनाश करने की बात कहता है तो कवष स्पष्ट कहता है कि वे लोग दस्यु नहीं है और लुट-पाट उनका पशा नही हैं। वास्तमें व भूमिधर किसान हैं जिन्हे अनार्य कहकर आर्यो ने प्रताडित किया है। कवष पूरी जानकारी देते हुए कहता है कि - "एक जमाने मं ब्रहमावर्त के आर्यो और इन्द्र ने इनके नगरों को नष्ट किया --- सिंधु इरावती और सरस्वती के तट पर वे जगमगाते नगर वीरान हो गये। उन्हे डर है कि अब ब्रहमावर्त के मुनि अपने यज्ञों मे नाम पर जंगलो को काट रहे है। मिट्टी बह कर सरस्वती की धारा को बन्द कर रही है। इस तरह उनकी बची-खुची खेती ही मटियामेढ हो जायगी।"[49] अन्ततः कवष इस कर्मपथ पर चलते हुए ही अपना बलिदान कर देता है। नहर का बाँध बनाते हुए जब बाढ आल पर उर्वी जर में डुब जाती है तो उसकी रक्षा करते हुए उसकी जीवन-लीला भी समाप्त हो जाती है। इस प्रकार कवष के समग्र चरित्र मे महान् मानवीय गुणोंका सन्निवेश है, निःस्वार्थ-भावना है। अपने इसी विशेषता के कारण कवष नाटक मं सर्वाधिक मर्मस्पर्शी पात्र है। जो पृथु के अधूरे व्यक्तित्त्व को पूर्णता प्रदान करने मे सहायक सिद्ध हुआ है।

शुक्राचार्य :

प्रस्तुत नाटक में अन्य मुनियों की दृष्टि से शुक्राचार्य अपनी चारित्रिक विशिष्टता के कारण आपना पृथक अस्तित्व रखते है। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त गम्भिर और प्रभावशाली है। वे तत्कालीन समस्त समुदाय का प्रतिनिधित्व करते है। शासक से लेकर प्रजा तक उनका प्रभाव-क्षेत्र समाज था। इसी कारण उन्हे नीतिकार भी कहा जा सकता है वे अनुशासन के नेता है। पृथु ने उन्हे अपना पुरोहित बनाया था। इस प्रकार नाटककारने महाभारतकालीन शुक्राचार्य को ज्यों की त्यों अपने नाटक मे ग्रहण किया है।

प्रखर कूटनीतिज्ञ :

प्रायः सभी प्राचीन ग्रन्थो मे शुक्राचार्य को एक प्रखर कूटनितिज्ञ के रूप मे प्रस्तुत किया है। सबसे पहल वे मुनियों की सर्वप्रभुत्ता और महिमा को जीवित रखते है। वह चाहते है कि कोई भी शासक इतना शक्ति-सम्पन्न न हो जाय कि मुनि उसके अंकुश मे आ जाएं। इसीलिए वे अत्याचारी कहकर वेन की हत्या करवाते है क्योंकि वेन स्वयंभू शासक मानने लगा था। राजा के चुनाव में भी यह शुक्रनीति स्पष्ट होती है। क्योंकि शव के मंथन के बहाने कवष को निषाद प्रमाणित करते है। वे नही चाहते कि कवष की वास्तविकता का ज्ञान दुनिया को जाय। अन्ततः जब पृथु राजा बनना स्वीकार करता है तब यही शुक्रचार्य उसके मनमे कवष के प्रति घृणा निर्माण करते है। साथ ही साथ पहला राजा पृथु का भी कुश की रस्सी म गाँठ बाँधकर वचन बध्द करते है। पृथु और कवषद्वारा सरस्वती बाँध का काम शुरु था उस कार्य बनानेवाले यही शुक्राचार्य है जो अपनी शुक्रनीति से गर्ग और अत्रि को परामर्श करके मजदूर न भेजने का फैसला करते है। इस प्रकार शुक्र्याचार्य की इस कूटनीति और दूरदर्शिता का ही परिणाम था कि अन्ततः पृथु मुनियों के बताए मार्ग पर आने को विवश हो जाता है साथ ही वैश्वानर अग्नि प्रज्वलित करते हुए दस्युओं के विनाश को तत्पर हो जाता है।

वर्तमान राजनीतिज्ञों प्रतीक :

शुक्राचार्य के समग्र चरित्र का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटककार ने उन्ह वर्तमान राजनीतिज्ञों क प्रतीक स्वरूप ही प्रस्तुत किया है। वह यद्यपि एक पौराणिक पात्र है किन्तु उनके माध्यम स आज के स्वार्थान्ध व्यक्तिवादी और पद-लिप्सु राजनेताओ का चित्र प्रस्तुत करने का सफल प्रयास हुआ है। उनकी कूटनीति, छल, प्रपंच, मिथ्यात्त्व, प्रवंचन, और प्रतारणा पर आधारित है। अपनी स्वार्थ-सिध्दि के लिए नेता क्या-क्या नही करते अपने उददश्य की सफलता के लिए सच्चाई और ईमानदारी को किस प्रकार भुला देते है शुक्राचार्य का चरित्र यह स्पष्ट कर देता है।

वर्तमान युग की भ्रष्ट राजनीति शक्ति और सत्ता को अपने अधीन रखने के लिए नित नय कुचक्र रच जाते है। यह है आज के नेताओं का चरित्र- जिसका निर्देशन शुक्राचार्य क चरित्र में पूर्ण अभिव्यक्त पा सका है। शुक्राचार्य के चरित्र में आधुनिक प्रपंची राजनीति का पूर्ण बिम्ब उतर आया है। इस दृष्टि से नाटककार पूर्णतः सफल रहा है कि पौराणिकता के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक नाजनीति का प्रतिबिम्ब इस नाटक में हो सके।

शुक्राचार्य की कूटनीति की सफलता वर्तमान भ्रष्ट राजनीति की सफलता ही है जिसके कारण पृथु जैस शासक जन-कल्याण की भावना रखते हुए भी निष्क्रिय हो जाते है और मुनि रूपी भ्रष्ट नेताओ के चुगल मे फंस कर रह जाते है। प्राचीन शुक्राचार्य की शुक्रनीति आधुनिक राजनीति का पर्दाफाश करने म ही अभिव्यक्त हुई है और शुक्राचार्य का मिथक आधुनिक राजनीतिक सन्दर्भ म नयी अर्थवत्ता प्राप्त कर चुका है।

<u>गर्ग</u> :

"पहला राजा" में वर्णित मुनित्रयी में गर्ग मुनि अपना विशिष्ट स्थान रखते है। यद्यपि वे शुक्राचार्य जैसे प्रभावि नही है, किन्तु वह शुध्द मुनि है जो अपने सरल स्वभाव और निस्पृहता के कारण किसी विचारधारा स परिबध्द नही है -- यदि प्रतिबध्द है तो केवल आर्य धर्म स और उसकी मर्यादा से । राजा पृथु क व ज्योतिष मंत्री है। व पूर्णतः एक निरीह परमुखापक्षी पात्र बनकर रह गय है और अधिकांशतः अत्रि मुनि के सहायक रूप मे ही दिखायी पडते है।

<u>वर्ण-संकरता के विरोधी</u> :

यद्यपि हम गर्ग के चरित्र में कभी भी विरोधी भाव नही देखते किन्तु आर्य-धर्म की मर्यादा के विरूध्द किसी भी विचार का वह स्वीकार नही पात। विशेष रूप से आर्य-धर्म की रक्त सम्बन्धि शुध्दता पर वह अधिक जोर देते है। उसमें होनेवाली मिलावट का तीव्र विरोध करते है। जब शुक्राचार्य से उन्हे यह समाचार मिलता है कि जिस अनार्य नारी से वेन क सम्बन्ध थे उसे गर्भवती होने की स्थिति में वेनने तिरस्कृत कर दिया और वह नारी हिमालय मे जाकर अंग की शरणागत बनी। जहाँ उसने पुत्र का जन्म दिया और अग ने दोनों का ही पालन-पाषण किया था, ता गर्ग मुनि किंचित आश्चर्य मे पडते हुए अपनी आक्रोशयुक्त वाणी में वर्णसंकरता का विरोध करते हैं।

अतः गर्ग मुनि की चारित्रिक विशिष्टताओं को देखा जाय तो वे एक सरल हृदय, वात्सल्य भाव रखनेवाले, कुशाग्र-बुध्दि चिन्तक मुनि है नाटककारने उन्हे यद्यपि गौण पात्र के रूप मे ही प्रस्तुत किया है और अन्य मुनियो के साथ नीति सहायक बनकर भी दर्शाया है। उनकी कुछ सिमित

विशिष्टताओ से पाठक और दर्शक दोनों का ही मन मोह लेते है।

अत्रि :

"पहला राजा" की मुनित्रयीं में अत्रिका विशिष्ट स्थान है। नाटक में वह एक जीवन्त पात्र के रूप मं नाटक की घटनाओं को रोचक एवं आकर्षक बनाते है। नाटककारने पुराणा में वर्णिक अत्रि मुनि को ही आधार मानकर प्रस्तुत नाटक मे उन्हे तदरुप ही ग्रहण किया है। पौराणिक तथ्यों के अनुसार पृथु की कथा में अत्रि मुनि का भी अत्यन्त महत्त्व है। लेखकन उन्हे मुनियो में व्याप्त दलबन्दी के प्रमुख स्तंभ के रूप में चित्रित किया है। आधुनिक सन्दर्भ में वह अपने और अपने दल के न्यस्त स्वार्थों के लिए पृथु को राजा बनाने स लेकर बाँध के कार्य में विलम्ब करने तक की प्रत्येक गतिविधी मे शुक्राचार्य के सहयोगी और प्रतिद्वन्द्वी के रूप में दिखाई देते है।

महान क्रान्तिकारी :

नाटक में चित्रित अत्रि एक महान् क्रांतिदृष्टा थे। तत्कालिन सामाजिक स्थिति स व सन्तुष्ट नही थे वरन् वे तो उसमें परिवर्तन और क्रांति के पक्षधर थे। चूंकि भाषण देने की कला के अत्रि मर्मज्ञ थे और उनके भाषण इतने प्रभावी थे कि सामाजिक परिवर्तन के लिए उन्होने इस कला को अपना अस्त्र बनाया। निर्माण चाहे हो या न हो किन्तु परिवर्तन लाने के उपरान्त ही निर्माण का स्वीकार कर पाते थे। उन्हे अपनी क्रांतिभावना पर विश्वास है, निर्माण से उन्हे कोई सरोकार नही। शुक्राचार्य उनकी वाग्वीरता की प्रशंसा अनेक स्थालों पर करते है।

अतः अत्रि मुनि एक महान क्रांतिकारी, प्रखरबुध्दि और ओजस्वी वाग्वीर, व्यवहार-कुशल, गम्भीर विचारक, ईर्ष्यालु एवं स्वार्थपरायण किन्तु दूसरे के गुणों की मुक्त-कण्ठ से प्रसंशा करनेवाले और समग्र रूप से एक सामान्य नेता है। नाटककारने उनका पौराणिक अस्तित्त्व दखकर ही अपने इस नाटक मे आधुनिकता के तौरपर उन्ह खरे उतारने का सफल प्रयास किया है।

उर्वी :

"पहला राजा" नाटक मे उर्वी का चरित्र धरती का ही प्रतीक है। उर्वी प्रस्तुत नाटक में पृथु के पश्चात सर्वाधिक आकर्षक एवं प्रभावशाली बनी है। उर्वी यह पात्र नाटककारके अनुसार काल्पनिक पात्र है जीसका घनिष्ठ सम्बन्ध धरती से है। धरती की समस्त विशेषताएँ हमे उर्वी के चरित्र मं मिलती है। अनेक स्थानोंपर उर्वी भी अपने माप का धरती के समान मानती है।

विवेकशील नारी :

उर्वी के चरित्र मे अत्यन्त हमे विवेकशीलता के दर्शन होते है। जब वह त्रिगर्त से आती है तो भी वह अर्चना से सम्मुख यह स्पष्ट नही कहती कि वह उन दो पुरुषा मे से किससे प्रेम करती है? वह अपना प्रम दोनो से ही प्रकट करती है। यह उसकी विवेकशीलता ही है। इससे भी आगे हमें अर्चना के साथ उर्वी के वार्तालाप में विवकशीलता उस स्थलपर मिलती है जब वह ब्रह्मावर्त के अंतरिक रहस्यों को समझाकर पृथु और कवष को वापिस ब्रह्मावर्त में लौटाना चाहती है।

उर्वी के विवेकशीलता का हमे ज्वलंत उदाहरण तीसरे अंक मे पृथु के साथ वार्तालाप के समय मिलता है। पृथु को मुनि भ्रमित कर देते है किन्तु उसे सही दिशा और प्रेरणा उर्वी ही देती है। उर्वी की प्रेरणा और विवेकशीलता के परिणामस्वरूप ही पृथु भूमि को समतल कर उसकी छिपी हुई सम्पदा को प्राप्त करता है।

उर्वी के चरित्र के द्वारा नाटक में आर्यो और अनार्यो के समन्वय पर भी बल दिया गया है।

अर्चना :

अर्चना को नाटककारने प्रस्तुत नाटक मे गर्ग मुनिद्वारा आश्रम में पालित कन्या के रूप मं प्रस्तुत किया है। जो अप्रतिम सौन्दर्यशालिनी है। उसक व्यक्तित्व के आकर्षण में पृथु ठगा-सा रह जाता है। उसके सौन्दर्य का वह फूल जैसी कोम है। उसका यौवन अमृतकुभ जैसा है। जिसमे लबालब मादकता का रस भरा हुआ है।[50] इतना ही नहीं अर्चना पृथु की आदर्श पत्नि है वह एक पति परायणा नारी है और पति को ही अपना सर्वस्व मानती है, वह संकट में पृथु का साथ दती है। अकाल प्रसंग में जब पृथु दस्युओं द्वारा घेरा जाता है तब वह उस संकट मं पिताजी द्वारा रोकने के आदेश को ठुकराकर पृथु के मास जाती है। वह गर्ग स कहती है- "नही पिताजी। आर्यपुत्र के प्राणों पर खतरा है। मुझ जाना है।"[51] अर्चना व्यवहार कुशल भारतीय नारी भी है। जब आत्रेय और भृगुवंशीय लोग पुल बांधने के काम मे व्यत्यय निर्माण करते है मजदूरो को मजदुरी नही देते तब वह अपने पिताजी से कहती है- आर्यपुत्र चिन्तित है कि आप लोगा ने अभी तक मजदूर नही भेज। बाँध पूरा नहीं हुआ तो सौवाँ यज्ञ पूरा नही होगा ।"[52]

इस प्रकार माथुरजी ने अर्चना को केवल सौन्दर्यवती, आदर्श पत्नि की रुप में चित्रित न कर सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रगट करनवाली भारतीय युवती के रूप मं चित्रित कर अर्चना के मिथक मे नूतन उद्भावना की स्थापना की है।

सुनीथा :

सुनीथा पुराणो के अनुसार मृत्यु की पुत्री है, वेन के शव वह विशिष्ट लेपन द्वारा सुरक्षीत रखती है, वह ऋषि-मुनियों के दबाव में तथा आर्य-अनार्य के संघर्ष में कसी हुई आधुनिक युग की नारी में चित्रित की गयी है। आय-अनार्य युध्द मे आहतो की परिचर्या करना उसका कार्य नूतन [illegible]कीय उद्भावनाएं हैं।

—

निष्कर्ष :

* उपर्युक्त विवेचन से यह कहा जा सकता है कि मिथक और साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। मिथक की अवधारण में अतीत, पुराकथा और लोकविश्वास को विशेष स्थान है। मिथक मानव निर्मित है।

* कभी कभी साहित्यकार वर्तमान मे जीकर भी अतीत की ओर दौडता है और अपनी साहित्य मे मिथको का प्रयोग करता है। जगदीशचन्द्र माथुरजी के विवेचित नाटका में मिथकों का प्रयाग इस दृष्टि स अपना महत्त्व रखते है।

* जगदीशचन्द्र माथुरजीने "कोणार्क" नाटक में तेरहवी, चौदहवी शताब्दी के कोणार्क मंदिर के निर्माण में जिन शिल्पियों को योगदान रहा है, उनमें स प्रधान शिल्पि विशु और युवाशिल्पि धर्मपद आधुनिक युगबोध स जोडने की कोशीश की है और शिल्पियों के मिथक की नयी व्याख्या प्रस्तुत की है। नाटक के अन्य पात्रों को भी मिथकीय प्रयोग में स्थान देने का यथोचित प्रयास नाटककारने किया है।

* "पहला राजा" नाटक मे माथुरजी ने भारतीय प्राचीन, इतिहास , वद और पुराणों के आधारपर पृथु और कवष की पात्र-सृष्टि कर उनमें मिथकीय नूतन उद्‌भावनाओं को रखांकित किया है। अन्य पात्रो को भी प्रासंगीक रूप मे मिथकीय प्रयोग में ढालने का नाटककार का प्रयास स्तुत्य है।

* "पहला राज" नाटक के बारे में हम इंद्रनाथ मदान की शब्दों में सहमत होकर कह सकते है कि "पहला राजा" में मिथकीय पध्दति को केवल आधार बनाया है। --- नाटककारने पृथु या पहला राजा के माध्यम से नेहरू के व्यक्तित्त्व को उजागर करना चाहा है। पुराने पात्रों और स्थितियों का चयन नेहरू-काल की समस्या ओं को उठाने के लिए किया गया है।"[53]

* संक्षेप में, जगदीशचंन्द्र माथुरजी ने "कोणार्क" और पहला राजा में अतीत के मिथकीय स्त्रोतों को चुनकर पात्र-स्त्रष्टि में पुरातन मिथकों को आधुनिक युग संदर्भ में नयी अर्थवत्ता प्रदान की है।

--

सन्दर्भ - सूची

1. मिथक और भाषा - प्रो.कल्याणमल लोढा (प्र सम्पा.) पृ 222 संस्क.1981
(डॉ.सुब्रत लाहिडो का लेख - "आधुनिक नाटकों का मिथक बोध")
2. मिथक: उद्भव और विकास तथा हिन्दी साहित्य - डॉ उषापुरी विद्यावाचस्पति, पृ. 7 संस्क. 1986
3 मिथक और साहित्य - डॉ.नगेन्द्र पृ 7, संस्क.1979
4. भारतवाणी- क.सी.सारंगमठ (सम्पा.) पृ.10 अंक 4-5 वर्ष 3, अगस्त-सितम्बर, 1990.
(डॉ.गजानन सुर्वे का लेख - श्री नरेश मेहता के "महाप्रस्थान" में मिथक बोध)
5 हिन्दी नई कविता - मिथक काव्य, डॉ.अश्विनि पराशर, पृ.58, संस्क.1985
6. मिथक और स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक - डॉ.रमेश गौतम, पृ. 25, संस्क. 1989
7. मिथक और भाषा - प्रो. कल्याणमल लोढा (प्र सम्पा.), पृ 225, सस्क.1981
(डॉ.सुब्रत लाहिडों का लेख "आधुनिक नाटकों का मिथक बोध)
8 कोणार्क - जगदीशचन्द्र माथुर पृ.58 संस्क.1973
9 वहीं - पृ. 59
10. वही - पृ. 47
11. वहीं - पृ.19
12. वही - पृ. 40
13 वहीं - पृ 58
14. वही - पृ. 12
15. वहीं - पृ 11
16. वही - पृ. 12
17 वहीं - पृ. 35
18. वही - पृ. 79
19. वही - पृ 35
20 वहीं - पृ. 76
21. वहीं - पृ. 4
22. वही - पृ. 11
23 वहीं - पृ. 8

24. पहला राजा – जगदीशचन्द्र माथुर पृ. 102, संस्क. 1976
25. मिथक और स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक – डॉ रमेश गौतम, पृ. 76 संस्क 1989
26. पहला राजा – जगदीशचन्द्र माथुर पृ. 31, संस्क. 1976
27. वहीं – पृ 5
28. वही – पृ 82
29. वहीं – पृ 82, 83
30 वहीं – पृ 30
31. वही –पृ. 83
32. वहीं – पृ. 106
33 भारतीय मिथक कोश – डॉ उषापुरी विद्यावाचस्पति, पृ. 187, संस्क, 1986
34. पहला राजा – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ 116, 117, संस्क. 1976
35. वहीं – समर्पण पृ. 7
36. वही – पृ. 26
37. वहीं – पृ 64
38. वहीं – पृ 51
39. वहीं – पृ. 52
40. वहीं – पृ. 116
41. वहीं – पृ. 67
42. भारतीय मिथक कोश – डॉ. उषापुरी विद्यावाचस्पति, पृ. 187, 188, संस्क. 1986
43. पहला राजा – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ. 97, संस्क. 1976
44. वहीं – पृ. 98
45. अथर्ववेद संहिता – श्री.दा.सातवलेकर (सम्पा.), पृ. 270
"माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।" (12–1–12)
46. पहला राजा – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ. 50, संस्क. 1976
47. वहीं – पृ. 51
48. वहीं – पृ 83
49. वहीं – पृ. 50
50. वही – पृ. 53

51. पहला राजा - जगदीशचन्द्र माथुर, पृ. 64, संस्क. 1976

52. वहीं - पृ. 91

53. आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य - इन्द्रनाथ मदान, पृ.234, द्वि.संस्क. 1978